3 हरबर्ट स्पेन्सर : सामाजिक उद्विकास का सिद्धान्त

[HERBERT SPENCER : THEORY OF SOCIAL EVOLUTION]

19वीं शताब्दी के सामाजिक विचारकों में हरबर्ट स्पेन्सर का नाम बहुत महत्वपूर्ण है। उन्होंने 19वीं शताब्दी की सामाजिक विचारधारा को एक नया मोड़ देने के साथ ही जीवशास्त्र (Biology) के सिद्धान्तों के आधार पर समाज का विश्लेषण प्रस्तुत किया। ऑगस्ट कॉम्ट को यदि समाजशास्त्र के जनक के रूप में जाना जाता है तो स्पेन्सर वह प्रमुख विचारक हैं जिन्होंने समाजशास्त्र को प्रतिष्ठित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। जिस तरह प्राणीशास्त्रीय उद्विकास के क्षेत्र में चार्ल्स डार्विन का नाम महत्वपूर्ण है, उसी तरह सामाजिक उद्विकास के सिद्धान्त के प्रतिपादक के रूप में सभी विद्वान स्पेन्सर के योगदान को स्वीकार करते हैं। स्पेन्सर एक ऐसे सामाजिक विचारक रहे हैं जिन्होंने बौद्धिक जगत में विज्ञान के अध्ययन से लेकर मनोविज्ञान, दर्शन, शिक्षा, राजनीति तथा समाजशास्त्र से सम्बन्धित मौलिक विचारों का प्रतिपादन किया। प्राणीशास्त्र और समाजशास्त्र के बीच एक अनूठा समन्वय करते हुए उन्होंने समाज की जो व्याख्या प्रस्तुत की, सामाजिक विचारों के इतिहास में उसे आज भी बहुत महत्वपूर्ण माना जाता है।

जीवन तथा कृतियाँ
(LIFE AND WORKS)

हरबर्ट स्पेन्सर का जन्म 27 अप्रैल, 1820 को इंग्लैण्ड के **डर्बी** नामक स्थान में एक साधारण अध्यापक परिवार में हुआ था। हरबर्ट स्पेन्सर के पिता जॉर्ज स्पेन्सर धार्मिक स्वतन्त्रता के साथ तत्कालीन राजनीतिक व्यवस्था में परिवर्तन के पक्षधर थे। 19वीं शताब्दी के आरम्भ में चर्च की सत्ता को पूरी तरह न मानने वाले लोगों को सामाजिक रूप से नीची निगाह से देखा जाता था। ऐसे परिवारों के बच्चों को अच्छे शिक्षण संस्थाओं में प्रवेश भी नहीं मिलता था जिन पर चर्च अथवा सम्मानित संगठनों का प्रभाव होता था। इसी कारण स्पेन्सर की स्कूली शिक्षा किसी प्रतिष्ठित स्कूल में सम्पन्न नहीं हुई। बचपन में उनका स्वभाव बहुत शर्मीला था तथा नियमित रूप से स्कूल जाने में भी उनकी अधिक रुचि नहीं थी। फलस्वरूप हरबर्ट स्पेन्सर को उनकी प्रारम्भिक शिक्षा घर पर उनके माता-पिता द्वारा ही दी गयी। तेरह वर्ष की आयु में वह अपने चाचा **थॉमस** के साथ रहने के लिए उनके घर चले गये। थॉमस क्रान्तिकारी विचारों के समर्थक थे तथा चर्च की बढ़ती हुई सत्ता के पक्ष में नहीं थे। प्राकृतिक विज्ञानों और दर्शन का उन्हें अच्छा ज्ञान था लेकिन इतिहास, अर्थशास्त्र या साहित्य में उनकी अधिक रुचि नहीं थी। उनके प्रभाव से सोलह वर्ष की आयु होने तक हरबर्ट स्पेन्सर को गणित और प्राकृतिक विज्ञानों का अच्छा ज्ञान हो सका। नीतिशास्त्र और राजनीति में भी हरबर्ट स्पेन्सर की रुचि बनी रही यद्यपि उन्हें इन विषयों का कोई समुचित प्रशिक्षण नहीं मिल सका। एक निर्धन परिवार से सम्बन्धित होने और अपनी आर्थिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए हरबर्ट स्पेन्सर ने सत्रह वर्ष की आयु से 'लन्दन तथा बर्मिंघम रेल-रोड कम्पनी' में एक इन्जीनियर के रूप में काम करना आरम्भ कर दिया। सन् 1841 में जब यह परियोजना पूरी हो गयी, स्पेन्सर पुनः अपने गृहनगर डर्बी में वापस आ गए। यहाँ आकर उन्होंने अनेक व्यावसायिक पत्रिकाओं के लिए इन्जीनियरिंग पर लेख लिखना आरम्भ किया लेकिन जल्दी ही उनकी रुचि सामाजिक और राजनैतिक विषयों की ओर बढ़ने लगी। इसके फलस्वरूप उन्होंने सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्र से जुड़ी पत्र-पत्रिकाओं में अपने लेख प्रकाशित करना आरम्भ कर दिये। इस अवधि में उनके द्वारा लिखा गया एक लेख 'सरकार का समुचित कार्य-क्षेत्र' (The Proper Sphere of Government) काफी उत्तेजक होने के बाद भी बहुत लोकप्रिय हुआ। लगभग

Scanned with CamScanner

सात वर्ष तक परिवर्तनवादी पत्रकारिता से जुड़े रहने के बाद सन् 1848 में वह लन्दन की सबसे प्रमुख पत्रिका **'इकोनॉमिस्ट' के सह-सम्पादक** नियुक्त हो गये।

दो वर्ष बाद ही सन् 1850 में हरबर्ट स्पेन्सर द्वारा लिखित उनकी प्रथम पुस्तक *'Social statics'* प्रकाशित हुई जो राजनैतिक दर्शन से सम्बन्धित थी। क्रान्तिकारी बौद्धिकता के क्षेत्र में उनका यह अपूर्व योगदान था। उस समय प्रगति अथवा 'Progress' एक ऐसा सामान्य शब्द था जिसका परिवर्तनकारी विचारकों सहित कॉम्ट ने भी व्यापक उपयोग किया था। उन्होंने इस शब्द को बहुत भ्रामक बताते हुए इसके स्थान पर *'Evolution'* (उद्विकास) शब्द के उपयोग पर अधिक जोर दिया। इस समय तक हरबर्ट स्पेन्सर डार्विन के प्राणीशास्त्रीय उद्विकास से परिचित हो चुके थे यद्यपि वह इससे सहमत नहीं थे। इसके बाद भी वह डार्विन के इस विचार से प्रभावित हुए कि जैविक रचना में होने वाला परिवर्तन असम्बद्ध समानता (incoherent homogeneity) से सम्बद्ध भिन्नता (coherent heterogeneity) की ओर होता है। यह एक ऐसी दशा है जिसे 'प्रगति' शब्द के द्वारा स्पष्ट न करके 'उद्विकास' के द्वारा ही स्पष्ट किया जा सकता है।

अपने आरम्भिक जीवन में प्राकृतिक विज्ञानों से जुड़े रहने के कारण स्पेन्सर ने सामाजिक उद्विकास तथा स्वतन्त्र राजनीति की विवेचना प्राकृतिक विज्ञानों के सन्दर्भ में ही करना आरम्भ कर दी।

सन् 1853 में हरबर्ट स्पेन्सर के चाचा थॉमस जिन्होंने उन्हें गणित और प्राकृतिक विज्ञानों में प्रशिक्षित किया था, की मृत्यु हो गयी। उनसे स्पेन्सर को एक अच्छी धनराशि प्राप्त हो गयी। स्पेन्सर की सदैव से यह इच्छा रही थी कि वे जीवन भर अविवाहित रहकर एक स्वतन्त्र अध्येता के रूप में जिन्दगी व्यतीत करें। यह धनराशि मिल जाने से स्पेन्सर की यह इच्छा पूरी हो गयी तथा उन्होंने *'Economist'* के सह-सम्पादक के पद से त्यागपत्र देकर स्वतन्त्र चिन्तन और लेखन करना आरम्भ कर दिया। अगले वर्ष ही 1854 में उनकी पुस्तक *'The Principles of Pshychology'* (मनोविज्ञान के सिद्धान्त) प्रकाशित हुई लेकिन अधिकांश विचारकों ने इसमें दिये गये स्पेन्सर के विचारों को स्वीकार नहीं किया। इससे स्पेन्सर को इतनी निराशा हुई कि **अब्राहम तथा मार्गन** के अनुसार वह अनेक वर्ष तक अफीम का सेवन करने के आदी बन गये।[1] सन् 1859 में जब **डार्विन** की पुस्तक *'The Origin of Species'* (प्राणियों की उत्पत्ति) प्रकाशित हुई तो उन्होंने इसकी प्रशंसा करने के बाद भी यह दावा किया कि पुस्तक में दिये गये अनेक विचारों को वह सन् 1852 में अपने एक लेख में पहले ही स्पष्ट कर चुके हैं। इसी पुस्तक के बाद स्पेन्सर ने 'योग्यतम की विजय' (Survival of the Fittest) की अवधारणा का व्यापक रूप से उपयोग करना आरम्भ कर दिया। उनका मानना था कि इसी अवधारणा के द्वारा समाजविरोधी तत्वों के ऊपर सामाजिक तत्वों तथा समाज से कम अनुकूलन करने वाले लोगों की तुलना में अधिक अनुकूलन करने वाले लोगों की श्रेष्ठता को समझा जा सकता है। यहीं से उनका चिन्तन सामाजिक उद्विकास के एक ऐसे सार्वभौमिक नियम की खोज पर आधारित हो गया जिसकी सहायता से सभी सामाजिक विज्ञानों के बीच एक समन्वय स्थापित किया जा सकता है।

सन् 1862 में हरबर्ट स्पेन्सर की अत्यधिक महत्वपूर्ण पुस्तक *'First Principles'* (प्रथम सिद्धान्त) प्रकाशित हुई तथा सन् 1867 में एक अन्य पुस्तक *'Principles of Biology'* (जीवशास्त्र के सिद्धान्त) का अनेक खण्डों में प्रकाशन हुआ। सन् 1872 में उनकी पुस्तक *'Principles of Psychology'* (मनोविज्ञान के सिद्धान्त) भी अनेक खण्डों में प्रकाशित हुई। इसके बाद सन् 1873 में जब उनकी पुस्तक *'The Study of Sociology'* (समाजशास्त्र का अध्ययन) प्रकाशित हुई, तब ऐसा लगा कि स्पेन्सर की रुचि दर्शन, जीवशास्त्र और मनोविज्ञान से हटकर समाजशास्त्र की ओर बढ़ रही है। इस पुस्तक में उन्होंने पहली बार इस बात पर जोर दिया कि "समाजशास्त्र को तब तक पूर्ण मान्यता नहीं मिल सकती जब तक सामाजिक व्यवस्था को समझने के लिए प्राकृतिक नियमों के आधार न माना जाय।"[2] इसके बाद स्पेन्सर अपनी पुस्तक *'Descriptive Sociology'* (व्याख्यात्मक समाजशास्त्र) लिखने में लग गये जो सन् 1873 से 1894 के बीच आठ खण्डों में प्रकाशित हुई। इसी के साथ उन्होंने एक अन्य पुस्तक *'Principles of Sociology'* (समाजशास्त्र के सिद्धान्त) भी लिखना आरम्भ की जो अनेक खण्डों में सन् 1896 में

1 Abraham and Morgan, *Sociological Thought*, pp. 53-54.
2 Herberth Spencer, *The Study of Sociology*, p. 360.

Scanned with CamScanner

प्रकाशित हुई। इस तरह सन् 1870 के बाद से स्पेन्सर को इंग्लैण्ड, अमेरिका और यूरोप के अनेक दूसरे हिस्सों के बुद्धिजीवियों और विद्वानों द्वारा मान्यता दी जाने लगी। अपने समय के प्रख्यात विद्वानों जॉन स्टुअर्ट मिल (J. S. Mill), थॉमस हक्सले (Thomas Huxley), टेन्डॉल (Tyndall) तथा जॉर्ज इलियट (George Eliot) से उनका घनिष्ठ सम्पर्क रहने लगा। इस समय तक केवल इंग्लैण्ड और अमेरिका में ही उनकी पुस्तकों को पढ़ने वालों की संख्या में वृद्धि नहीं हुई बल्कि अनेक पुस्तकों का जर्मन, स्पेनिश, इटेलियन और यहाँ तक कि रूसी भाषा में भी अनुवाद होने लगा।

उपर्युक्त पुस्तकों के अतिरिक्त स्पेन्सर ने कुछ अन्य पुस्तकों की भी रचना की। सन् 1902 में उनकी मृत्यु हो गयी। वास्तव में, वह अपने समय के एक क्रियात्मक व्यक्ति होने के साथ ही मानवतावादी भावनाओं से परिपूर्ण थे। विभिन्न मानवतावादी संगठनों के सदस्य के रूप में उन्होंने साम्राज्यवादी परम्पराओं का विरोध करके व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को विशेष महत्व दिया। समाजशास्त्र से सम्बन्धित अपने अधिकांश विचारों में उनका चिन्तन कॉम्ट से भिन्न था। कुछ समाजशास्त्री यह मानते हैं कि स्पेन्सर के योगदान को पूरी तरह मौलिक नहीं कहा जा सकता। कारण यह है कि उन्होंने अपने ग्रन्थ 'समाजशास्त्र के सिद्धान्त' में जो विचार प्रस्तुत किये, उनमें से अधिकांश विचार कॉम्ट द्वारा पहले ही प्रस्तुत किये जा चुके थे। यहाँ तक कि उनकी प्रथम पुस्तक 'सामाजिक स्थितिकी' (Social Statics) में भी जो विचार दिये गये, वे एक बड़ी सीमा तक कॉम्ट द्वारा प्रकाशित 'ओप्सक्यूल' (Opuscules) से अधिक भिन्न नहीं हैं। वास्तविकता यह है कि केवल कुछ विचारों की समानता के आधार पर ही स्पेन्सर को कॉम्ट से प्रभावित मान लेना उचित नहीं है। स्पेन्सर का चिन्तन मुख्यत: समाज के सावयवी सिद्धान्त तथा सामाजिक उद्विकास के सिद्धान्त पर ही आधारित रहा। इस दशा में यह आवश्यक है कि प्रस्तुत विवेचन में हम स्पेन्सर द्वारा प्रस्तुत सामाजिक डार्विनवाद, अधिसावयवी उद्विकास एवं सामाजिक उद्विकास के सिद्धान्त को विस्तार से समझने का प्रयत्न करें जिससे उनके चिन्तन के केन्द्र बिन्दु को समझा जा सके।

सामाजिक डार्विनवाद
(SOCIAL DARWINISM)

हरबर्ट स्पेन्सर के समाजशास्त्रीय चिन्तन में सामाजिक उद्विकास वह सबसे महत्वपूर्ण आधार है जिसके कारण पूरी दुनिया में उन्हें एक प्रतिष्ठित समाजविज्ञानी के रूप में मान्यता मिल सकी। सामाजिक उद्विकास के बारे में स्पेन्सर के विचार एक बड़ी सीमा तक डार्विन (Darwin) द्वारा प्रस्तुत उद्विकास की अवधारणा से प्रभावित हुए। फलस्वरूप डार्विन की उद्विकासवादी विचारधारा के आधार पर स्पेन्सर ने सामाजिक उद्विकास से सम्बन्धित जो विचार प्रस्तुत किये, उन्हीं को सामाजिक डार्विनवाद कहा जाता है। सामाजिक डार्विनवाद को समझने के लिए यह आवश्यक है कि सबसे पहले उद्विकास की अवधारणा तथा उद्विकास के बारे में डार्विन के विचारों को संक्षेप में स्पष्ट किया जाय।

उद्विकास का अर्थ (Meaning of Evolution)

शाब्दिक रूप से अंग्रेजी के शब्द 'Evolution' की उत्पत्ति लैटिन भाषा के शब्द 'Evolvere' से मानी जाती है। 'E' का अर्थ है 'बाहर की ओर' (out) तथा 'volvere' का अभिप्राय 'फैलने' या 'प्रकट होने' (to unfold) से है। इससे स्पष्ट होता है कि किसी वस्तु के फैलने या बढ़ने की प्रवृत्ति को ही उद्विकास कहा जाता है। इसके बाद भी प्रत्येक वस्तु का बढ़ना या फैलना उद्विकास नहीं होता। उदाहरण के लिए मिट्टी के बढ़ते हुए ढेर को हम उद्विकास नहीं कहेंगे। वैज्ञानिक अर्थ में उद्विकास एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक क्रमिक प्रक्रिया के अन्तर्गत कोई सरल विशेषता धीरे-धीरे जटिल रूप लेती जाती है। इस आशय को स्पष्ट करते हुए **हरबर्ट स्पेन्सर** ने लिखा है, **"उद्विकास कुछ तत्वों का एकीकरण तथा उससे सम्बन्धित वह गति है जिसके दौरान कोई तत्व एक अनिश्चित और असम्बद्ध समानता से निश्चित और सम्बद्ध भिन्नता में बदल जाता है।"**[1] उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि उद्विकास एक ऐसा परिवर्तन है जिसके अन्तर्गत किसी वस्तु या विशेषता में होने वाला परिवर्तन अनेक स्तरों के माध्यम से होता है तथा प्रत्येक आगामी स्तर में उस वस्तु या विशेषता का रूप पहले से अधिक जटिल होता जाता है।

1 "Evolution is the integration of matter and concomitant dissipation of motion during which matter passes from indefinite incoherent homogeneity to a definite coherent heterogeneity."
—Herbert Spencer, quoted by Robert Bierstedt, *The Social Order*, pp. 69-70.

Scanned with CamScanner

मैकाइवर और **पेज** ने उद्विकास के अर्थ को स्पष्ट करते हुए लिखा है, "जब परिवर्तन में केवल निरन्तरता ही नहीं होती बल्कि परिवर्तन की एक दिशा भी होती है, तब ऐसे परिवर्तन से हमारा तात्पर्य उद्विकास से होता है।"[1] मैकाइवर ने यह भी स्पष्ट किया कि उद्विकास एक ऐसा परिवर्तन है जो किसी वस्तु के अन्दर विद्यमान कुछ आन्तरिक शक्तियों के प्रभाव से उसमें परिवर्तन पैदा करता है। **आगबर्न** तथा **निमकॉफ** ने एक विशेष दिशा की ओर होने वाले क्रमिक परिवर्तन को उद्विकास के नाम से सम्बोधित किया।

इन कथनों से स्पष्ट होता है कि उद्विकास एक विशेष दिशा की ओर होने वाला वह क्रमिक परिवर्तन है जो कुछ आन्तरिक शक्तियों के फलस्वरूप उत्पन्न होता है तथा इसकी प्रवृत्ति सरलता से जटिलता की ओर बढ़ने की होती है।

डार्विन का उद्विकास का सिद्धान्त (Darwin's Theory of Evolution)

उद्विकास के सिद्धान्त को मुख्य रूप से डार्विन के नाम से जाना जाता है। डार्विन एक जीवशास्त्री थे जिनकी प्रसिद्ध पुस्तक *'The Origin of Species'* (प्राणियों की उत्पत्ति) सन् 1859 में प्रकाशित हुई। इस पुस्तक के प्रकाशन से पहले सभी तरह के जीवों और पेड़-पौधों की उत्पत्ति के बारे में लोगों को कोई व्यवस्थित जानकारी नहीं थी। साधारणतया उनकी उत्पत्ति को एक अलौकिक रचना के रूप में ही देखा जाता था। डार्विन ने गहन अध्ययन के बाद यह स्पष्ट किया कि आरम्भ में पृथ्वी पर किसी तरह का जीवन नहीं था। धीरे-धीरे विभिन्न रासायनिक प्रक्रियाओं के कारण पृथ्वी पर बहुत सरल प्रकृति के जीवों का जन्म होना आरम्भ हुआ। समय बीतने के साथ ही इन जीवों की शारीरिक रचना में भी परिवर्तन होने लगा।

अपने अध्ययन के आधार पर डार्विन ने यह स्पष्ट किया कि आरम्भ में प्रत्येक जीवित वस्तु का रूप बहुत सरल होता है। यह दशा अनिश्चित और असम्बद्ध समानता (indefinite and incoherent homo-geneity) की दशा होती है। इसका तात्पर्य है कि आरम्भिक स्तर पर एक जीव के विभिन्न अंग एक-दूसरे के इतने समान होते हैं कि उन्हें एक-दूसरे से पृथक् कर सकना बहुत कठिन होता है। आगामी स्तरों पर जैसे-जैसे जीव का विकास होता जाता है, उसके विभिन्न अंग एक-दूसरे से भिन्न दिखायी देने लगते हैं तथा उन अंगों के बीच पाये जाने वाले सम्बन्ध को समझना भी सम्भव हो जाता है। उदाहरण के लिए हम एक बीज को ले सकते हैं जिसका रूप आरम्भ में बहुत सरल होता है तथा हम यह भी नहीं जानते कि एक पौधे के रूप में इसका आगामी रूप कैसा होगा। दूसरे स्तर पर जब वह बीज एक पौधे या पेड़ के रूप में बदल जाता है, तब उसके सभी अंग, जैसे—जड़ें, तना, शाखाएँ और पत्तियाँ एक-दूसरे से अलग हो जाती हैं। इस प्रकार अनिश्चित रूप निश्चित रूप में और समानता की दशा भिन्नता के रूप में सामने आने लगती है। साथ ही पौधे या वृक्ष के सभी अंग अलग-अलग कार्यों के द्वारा उसके पोषण में सहायता देते हैं। उदाहरण के लिए जड़ों से पेड़ को भोजन मिलता है, टहनियाँ उसकी वृद्धि में सहायता करती हैं, छाल से पेड़ पर गर्मी-सर्दी का अधिक प्रभाव नहीं पड़ता तथा पत्तियाँ धूप और वायु को ग्रहण करके उसके स्वास्थ्य को बनाये रखती हैं। इस प्रकार जो वस्तु आरम्भ में असम्बद्ध होती है, आगामी स्तरों पर उसके अंगों के बीच परस्पर निर्भरता या सम्बद्धता विकसित होने लगती है। इसी को डार्विन ने अनिश्चित और असम्बद्ध समानता से **निश्चित और सम्बद्ध भिन्नता की ओर होने वाला परिवर्तन कहा।**

डार्विन के अनुसार उद्विकास एक क्रमिक प्रक्रिया है जो अनेक स्तरों के द्वारा किसी वस्तु अथवा जीव में परिवर्तन की दशा पैदा करती है। उदाहरण के लिए मानव की आरम्भिक रचना नर-वानर, जैसे—चिम्पांजी, ओरंगउतान या गोरिल्ला के रूप में थी। मानव नर-वानर के रूप में ही सभी तरह की क्रियाएँ और व्यवहार करता था। दूसरे स्तर पर जब मानव ने दो पैरों पर खड़े होकर चलना शुरू किया तो उसके पैरों की बनावट में परिवर्तन होने लगा तथा पेट का आकार बहुत सन्तुलित हो गया। आगामी स्तर में नीचे की ओर लटका हुआ मुँह चपटे आकार का हो गया तथा नाक और कान की बनावट में भी परिवर्तन स्पष्ट होने लगे। इस स्तर पर अधिकांश काम हाथों के द्वारा करने के कारण उँगलियाँ अधिक पतली और सन्तुलित बनने लगीं। मुँह के हिस्से पर रक्त का अधिक दबाव न रहने से मानव की जीभ इतनी पतली हो गयी कि वह स्पष्ट रूप से कुछ शब्दों का उच्चारण करने लगा। इस प्रकार लाखों वर्षों की अवधि में मानव की जीव-रचना एक अनिश्चित और असम्बद्ध समानता से निश्चित और सम्बद्ध भिन्नता में बदल गयी। आरम्भिक स्तर पर

1 MacIver and Page, *Society*, p. 522.

Scanned with CamScanner